अंताक्षरी

कहानी माला–27

टॉफी

□ लाल्टू

टॉफी

□ लाल्टू

उन दिनों जहाँ हम रहते थे, अब वहां एक बहुमंजिला इमारत है। बांग्ला में उस तरह के इलाके को 'बस्ती' कहते हैं। बस्ती का मतलब झुग्गी झोपड़ियों वाला इलाका सा होता है, हालांकि हमारी उस बस्ती में पक्के मकान थे। हमारें घर में दो कमरे में एक कोने में रसोई का इंतजाम था। कोई दस परिवारों के लिए चार पाखाने थे। दो पानी के नल, जिनमें सुबह-शाम पानी दो बार आता और पानी के लिए झगड़ा होता।

पिताजी सुबह-सुबह उठते; मुझे भी उठा देते। जल्दी-जल्दी नित्य-कर्म करने के बाद दोनों मिलकर नाश्ता तैयार करते। पिताजी स्टोव जलाते और मैं टीन से आटा थाली में डालता, जब तक चाय का पानी गर्म होता, पिताजी जल्दी से आटा गूंथ लेते। मेरे लिए दूध गर्म करके, उसी में से एक-दो चम्मच अपनी

चाय में डालकर फिर चाय पीते-पीते मेरे लिए पराठे सेंकते। खुद कभी खाते, कभी नहीं। फिर पगड़ी जमाने में आधा घंटा लगा देते।

अधिकतर सुबहों में बूढ़ा आदमी एकतारा बजाता हुआ आता और दर-दर ज़ाकर गाता, 'हरि की मिश्री घोल मनवा, राम-राम नित बोल।' पिताजी उसे देखते ही डांटकर कहते, 'कभी कुछ काम-धाम भी कर, रोज आ जाता है।' फिर उसे एक परांठा दे देते। मुझे ऐसा दिन याद नहीं आता, जब वह आदमी खाली हाथ लौटा हो।

स्कूल अधिक दूर न था। हम पैदल जाते। अकेले जाने की कल्पना भी मैं नहीं कर पाता। जाने किसने मुझे कह दिया था कि स्कूल के सामने से जो सड़क कोयला डीपो की ओर जाती थी, उसके दूसरी छोर पर बाघ और चीते मिलते थे। पिताजी के साथ चलते-चलते कई बार मैं सोचता कि अगर कोई शेर आ ही गया तो वे उसे मार डालेंगे।

स्कूल पहुंचते ही मैं अपनी कक्षा के बच्चों के साथ घुलमिल जाता और पिताजी

अपने साथी शिक्षकों के साथ। उनको देखते ही बाकी शिक्षक कहते, 'सरदारजी नमस्कार!' यह मुझे बाद में पता चला था कि उनका नाम गुरप्रीत सिंह भले था, लोग उन्हें सरदार जी ही कहते थे, क्योंकि उन दिनों सभी सिखों को सरदारजी ही कहते थे।

कलकत्ता का एक साधारण, हिंदी माध्यम। टिफिन के वक्त बच्चों को दूध, ब्रेड और कभी-कभी फल या मिठाई बंटती। यह सरकारी राहत थी। पिताजी ने कह रखा था कि मैं दूध कभी न पीऊं और केवल सड़ा हो तो न खाऊं। उनकी इच्छा के खिलाफ दूध पीने या सड़ा केला खाने की हिम्मत मैंने कभी नहीं की।

मुझे यह याद नहीं कि वे क्या पढ़ाते थे। शायद उस स्कूल का हर शिक्षक हर विषय पढ़ाता था। मेरे प्रति सभी शिक्षकों की अलग कृपा-दृष्टि थी। यह केवल इसलिए नहीं कि मेरे पिता उनके साथी थे, बल्कि इसलिए भी कि मां का न होना उनको मेरे जीवन की बहुत बड़ी दुर्घटना लगती थी।

मां की हल्की-हल्की याद मन में है। वह कब मेरे जीवन से विलुप्त हो गई,

यह मुझे याद नहीं, शायद मुझे कभी बतलाया ही न गया हो कि मां का चला जाना क्या होता है और मैं उसके न होने का आदी हो गया था। अब मैं जानता हूं कि मुझे जन्म देकर सत्रह साल की उम्र में ही मां गुजर गई थी। कभी-कभी अचानक ही मां का चेहरा मुझे दिख जाता है, पर शायद वह उनके एक पीले पड़ गए फोटोग्राफ को देखने की वजह से होगा, जो हमारे सबसे पुराने एलबम के पहले पन्ने पर जड़ा है। फोटोग्राफ में वह इतनी सुंदर नहीं है, जितनी कल्पना में दिखती है। उसकी शक्ल से भी अधिक उसके स्पर्श की एक अनुभूति मन और शरीर की अनजान प्रक्रियाओं में अचानक ही कभी उभरती है और मैं देर तक सोचता रह जाता हूं।

स्कूल शायद सुबह सात बजे से दिन के बारह बजे तक चलता। भरी दोपहर लौटकर पिताजी फिर एक बार मुझे नहाकर–जाड़ों में हाथ–पैर धुलाकर–खाना बनाते। बचपन के उन दिनों में खाए खाने का स्वाद अभी तक मेरी जीभ पर है। शायद पिताजी पंजाब से लाए देशी घी का बहुत उपयोग किया करते। साल

में एक महीना–आमतौर से गर्मियों में–हम पंजाब जाते। वहां दादी मां देशी घी का पीपा तैयार रखतीं। साल भर में एक दस किलो का पीपा हम दोनों मिलकर खत्म करते।

दोपहर में आराम करने के बाद पिताजी ट्यूशन करने निकलते। आमतौर से मैं घर पर ही खेलता रहता या उनकी दी हुई हिदायत के अनुसार पढ़ता-लिखता। कभी कभार उनके साथ भी चल पड़ता। अब सोचता हूं तो लगता है कि कई बच्चों को वे मुफ्त पढ़ाते, पर कुछेक जगहों पर उन्हें दस रुपये के आस-पास महीने में मिलता। उनके साथ चलने पर वे पेड़-पौधों या रास्ते पर दिखती कई चीजों के बारे बतलाते। कभी-कभी पास के रेलवे स्टेशन तक मुझे ले जाते और रेलगाड़ी के बारे में समझाते। अवाक् नेत्रों से मैं धुंआ छोड़ते उन दानवों को देखता और पिताजी भाप का इंजन और पिस्टन वगैरह के बारे में मुझे बतलाते।

कभी-कभी कुछ बच्चे घर आकर उनसे पढ़ते। शाम होते ही वे चले जाते। शाम को पिताजी अक्सर दारू पी लेते और जरा जरा सी गलती पर मुझे पीटते।

कभी-कभी पड़ोसी आकर मुझे छीन ले जाते और बाद में उनके पास मुझे सुला जाते। अब सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि उनके पीटने के बावजूद मुझे उन्हीं के पास लेटने में सबसे अधिक सुरक्षा महसूस होती। दूसरे दिनों वे देर रात तक बैठ किताबें पढ़ते रहते।

जिस दिन की याद मुझे सबसे अधिक आती है, उस दिन भी उन्होंने दारू पी थी और खूब शोर मचाया था। उस दिन दोपहर को राजकिशोर नाम का एक लड़का घर पर पढ़ने आया था। गर्मी के दिन थे। राजकिशोर को सवाल करवाने में पिताजी परेशान हो रहे थे। अचानक बिजली चली गई। कमरे में एक पंखा था। डी.सी. करेंट से चलता। पंखा बंद हो जाने से उमस बढ़ गई और पिता जी बार-बार गर्दन हिलाने लगे। एक बार उन्होंने कहा, "बहुत गर्मी है...पंखा भी बंद हो गया," उन्होंने पगड़ी भी उतारकर रख दी थी।

राजकिशोर मुस्करा रहा था। पिताजी झल्ला उठे, "हंसने की क्या बात है रे?"

वह बिना घबराए बोला, "हमारे घर तो पंखा है ही नहीं, सरजी!"

पिताजी थोड़ी देर उसकी ओर देखते रहे और बोले, "जाओ, आज जाओ, कल आ जाना।" उसके चले जाने के बाद भी पिताजी देर तक वहीं बैठे रहे।

उस शाम वे मुझे साथ लेकर किसी के घर गए। ट्राम पर चढ़कर थोड़ी दूर! ट्राम का किराया उन दिनों पाँच पैसे था। कुछ सालों बाद सरकार ने एक पैसा किराया और बढ़ाया तो शहर भर में दंगे हुए थे। जिस घर में हम पहुंचे, वहां भी एक सिख परिवार रहता था। हट्टे-कट्टे कद के एक सज्जन शानदार पगड़ी पहने एक बड़ी कुर्सी पर बैठे थे। पिता जी ने पहुंचते ही कहा, "सत् श्री अकाल!"

मुझे "सत् श्री अकाल" कहना सिखाया गया था, पर मैं भूल गया था और हाथ जोड़ते ही मुंह से निकलता, "नमस्कार"। मुझे एक चाकलेट टॉफी दी गई और फिर मेरा होना जैसे वे लोग भूल ही गए। पता नहीं उस घर में बच्चे थे या नहीं। मैं इधर-उधर रखा सामान, दीवार पर लटका गुरुनानक की तस्वीर वाला कैलेंडर वगैरह देखता और रुक-रुक कर पिताजी की ओर देखता। कैलेंडर के पन्ने पंखे की हवा में फड़फड़ाते हुए बिखरने की कोशिश करते और कोई अदृश्य

हाथ उन्हें वापस संजोता रहता।

एक बार उन सज्जन ने—उनका नाम शायद हरभजन सिंह था—कहा, "गुरप्रीत, तू अकेला सरदार होगा सारे बंगाल में, जो इस तरह प्राइमरी के बच्चों को पढ़ाकर जी रहा है। यार, कुछ और कर ले। हमारी टैक्सी चला ले—कुछ कमाके पिंड ले जा।"

तभी मैंने पिताजी की ओर देखा। दाढ़ी से ढके गालों के ऊपर उनकी आँखें फीकी होती जा रही थीं। उन्होंने शायद कुछ कहने की कोशिश की, पर अब याद नहीं आता।

फिर हरभजन बोले, "यार, आजकल मिल्ट्री में भर्ती हो रही है। लड़के को गांव में रख और भर्ती हो जा। जंग कुछ महीनों में खत्म हो जाएगी—तेरी अच्छी नौकरी रह जाएगी।" पिताजी उन दिनों सत्ताइस साल के होंगे। मैंने वर्दी पहने सिख सैनिक देखे थे। मेरे मन में पिताजी को वर्दी पहने देखने की एक तीव्र इच्छा होने लगी।

वह चीन की लड़ाई थी। 1962 की। पिताजी अचानक बोले, "मिल्ट्री का सवाल ही नहीं उठता, दुनिया में कोई मिल्ट्री नहीं होनी चाहिए।"

हालांकि यह बड़ी अजीब बात थी, पर मुझे उन पर इतना भरोसा था कि अचानक लगने लगा कि वर्दी पहनने पर आदमी कोचला डीपो के पास रहने वाला बाघ बन जाता है।

हरभजन बोले–"तेरा तो किताबों ने सिर खा लिचा है। हर देश की अपनी सेना होनी जरूरी है। नहीं तो चीन आज हमला करके यहां तक पहुंच जाए।"

पिताजी बोले, "आज ही मेरे पास एक लड़का आया था, इस बड़े शहर में भी उनके घर बिजली नहीं है। उसे क्या फर्क पड़ेगा कि कोई बंगाल आता है या हुनान? इतने लोगों की मौत किसी के भी हित में नहीं है।"

हरभजन उनकी ओर देखते रह गए। फिर अचानक बोले, "तेरा इलाज हमें पता है। अब कई साल हो गए गुरप्रीत। तू अब फिर से घर बसा। बेटे को भी सही परवरिश मिलेगी।"

पिताजी सिर झुकाए बैठे रहे। कुछ नहीं बोले। थोड़ी देर हरभजन बोलते रहे। फिर औपचारिक बातें कहकर पिताजी उठ पड़े और हम वापस आ गए।

उस साल मुहल्ले में किसी ने दीवाली न मनाई थी। ब्लैक-आउट होता तो मैं पिताजी के साथ चिपका बैठा रहता। उनकी तड़प का अहसास मुझे अभी तक होता है। उन दिनों शहर की रातें सुनसान होती थीं। ब्लैक-आउट से वे और भी भयावह लगतीं।

हरभजन के घर से लौटकर उस दिन उन्होंने फिर दारू पी। पर उस दिन मेरी पिटाई नहीं हुई। पास बुलाकर बड़े प्यार से कहा, "क्यों रे, तूझे वो टॉफी अच्छी लगी थीं?"

मैं कहना चाहता था कि वह टॉफी बहुत अच्छी लगी थी, पर उनकी शक्ल की ओर देखते ही होंठों से निकला था, "नहीं, मैंने वह टाफी खाई ही नहीं। बाहर फेंक दी।"

उनके चेहरे पर तब मुस्कान आ गई थी। इसके बाद वे चीखने लगे थे।

आज मैं जहां रहता हूं वहां हमारा अपना बाथरूम है। दो कमरों में अलग-अलग पंखे लगे हैं। पिताजी की बहुत बाद की तस्वीर फ्रेम में बंधी एक दीवार पर लगी है। दूरदर्शन पर बोस्तिया में चल रही लड़ाई की खबरें सुन रहा हूँ। मेरी पत्नी, जिसका नाम भी गुरप्रीत है—रसोई में पानी भरते हुए मुझसे कह रही है—"इस बार कूलर लगवा ही लो, गर्मी बहुत पड़ रही है।"

कूलर लगवा ही लेना चाहिए, सोचते हुए गर्दन मोड़ते ही चौंक उठता हूँ। दीवार के सामने पिताजी खड़े मुस्करा रहे हैं। प्यार से पूछते हैं, 'तूने वो टॉफी खाई थी न?"

आपके जवाब के इन्तजार में-
शिवसिंह नयाल
'अलारिप्पु' बी-6/62, पहली मंज़िल, सफदरजंग इन्क्लेव,
नई दिल्ली-११००२९. दूरभाष : 6109327

ज्योति लेज़र टाइपसेटिंग
दिल्ली-११००९२